बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 131

बैंक राष्ट्रीयकरण के 50 वर्ष

पचास वर्ष पूर्व आज ही के दिन इंदिरा गांधी की सरकार ने 14 वाणिज्यिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण करने का निर्णय लिया था। उस घटना को आजाद भारत की सबसे बड़ी आर्थिक गतिविधि कहा जाता है। हालांकि निर्णय के पीछे आर्थिक आधार दिया गया था लेकिन इसकी वजह राजनीतिक ज्यादा थी। सन 1980 में सरकार ने छह अन्य बैंकों का नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया।

बैंक राष्ट्रीयकरण का विचार नया नहीं था। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की एक आंतरिक समिति ने सन 1948 में ही बैंकिंग और बीमा क्षेत्र के राष्ट्रीयकरण की अनुशंसा की थी जिसे आगे चलकर समर्थन भी मिला। स्वतंत्रता के पश्चात बैंकिंग व्यवस्था की अपनी दिक्कतें थीं और अहम क्षेत्रों तक ऋण की पहुंच और प्रवाह को लेकर कुछ मसले भी थे। उदाहरण के लिए टुकड़ों में बंटे होने की समस्या को समावेशन से दूर किया गया। बैंकों की तादाद 1951 में 566 से घटाकर 1967 में 91 कर दी गई। राष्ट्रीयकरण के पहले सरकार ने कुछ मसलों को सामाजिक नियंत्रण के जरिये हल करने का प्रयास किया था। मूल विचार था ऋण की व्यापक पहुंच सुनिश्चित करना और प्राथमिकता वाले क्षेत्रों में आवक बढ़ाना।

राष्ट्रीयकरण का मुद्दा समय-समय पर सर उठाता रहा लेकिन सन 1960 के दशक में बढ़ती आर्थिक कठिनाइयों और कुछ चुनावी झटकों के बाद पार्टी पर नियंत्रण बनाए रखने की आवश्यकता ने इंदिरा गांधी को बैंक राष्ट्रीयकरण के लिए मजबूर किया। इसके परिणामस्वरूप बैंक जमा में इजाफा हुआ और वित्तीय बचत बढ़ी। बढ़ते राजकोषीय घाटे ने बैंकिंग क्षेत्र को फाइनैंसिंग का एक अहम जरिया बना दिया। निरंतर राजनीतिक हस्तक्षेप के बीच मुनाफे पर असर पड़ा। आगे चलकर बैंकों के परिचालन पर भी असर पड़ने लगा और सन 2014 में प्रधानमंत्री जन धन योजना के आगमन के पूर्व तक देश की आबादी का एक बड़ा हिस्सा औपचारिक बैंकिंग से दूर बना रहा। राष्ट्रीयकरण के 50 वर्ष बाद अधिकांश सरकारी बैंक उस स्थिति में नहीं हैं जैसा सोचा गया था। बीते कुछ वर्ष में सरकार ने बैंकों में 2.5 लाख करोड़ रुपये की राशि डाली है। चालू वर्ष में भी 70,000 करोड़ रुपये की राशि बैंकिंग में डाली जा रही है और शायद अभी और राशि की आवश्यकता होगी। सरकारी बैंक फंसे हुए कर्ज की समस्या से भी जूझ रहे हैं।

कई ऐसी बात हैं जिन पर ध्यान देना आवश्यक है। पहली बात, सरकार के पास इन बैंकों में निरंतर पूंजी डालने की राजकोषीय गुंजाइश नहीं है। पुनर्पूंजीकरण बॉन्ड के प्रयोग की अपनी सीमाएं हैं क्योंकि इससे सरकार की जवाबदेही बढ़ती है। दूसरी बात, बैंकिंग और फाइनैंस में तकनीक की भूमिका तेजी से बढ़ रही है और कमजोर बैलेंस शीट वाले सरकारी बैंक इस स्थिति में नहीं हैं कि वे इस क्षेत्र में प्रतिस्पर्धी रह पाएं। जाहिर है निजी बैंक बढ़त बना रहे हैं। तीसरा, सरकारी बैंकों में मौजूदा स्थिति में जरूरी सुधार लागू करना भी मुश्किल है। कुल बकाया ऋण का 66 फीसदी इन बैंकों के पास है और कुल जमा का 65.7 फीसदी इन बैंकों के पास है। ऐसे में इन्हें परिचालन और कार्य के स्तर पर स्वायत्तता की आवश्यकता है। सरकार के बहुलांश हिस्सेदार रहते ऐसा होना मुश्किल है। ऐसे में सरकार को व्यवस्थित ढंग से अपनी हिस्सेदारी कम करनी चाहिए। सरकार नरसिम्हन समिति की अनुशंसाओं पर पुनर्विचार कर सकती है। सरकारी हिस्सेदारी को 33 फीसदी करने से न केवल बैंकों को अधिक स्वायत्तता मिलेगी बल्कि वे पूंजी जुटाकर बाजार में प्रतिस्पर्धी भी बन सकेंगे।

पचासवीं वर्षगांठ सरकारी बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद के प्रदर्शन के आकलन के लिए उचित अवसर है। इसके आधार पर सुधार के उपाय किए जा सकते हैं। यथास्थिति बरकरार रखने से न केवल सरकारी खजाने पर बोझ बढ़ेगा बल्कि संभावित वृद्धि पर भी बुरा असर होगा।

अजय मोहंती

बैंक राष्ट्रीयकरण के 50 साल पर जश्न या विलाप

राष्ट्रीयकृत बैंकों ने सरकारों की तरफ से सौंपे गए दायित्वों का अच्छी तरह निर्वहन किया है लेकिन कारोबारी मोर्चे पर अधिकांश बैंक नाकाम रहे हैं। बता रहे हैं **तमाल बंद्योपाध्याय**

शुक्रवार को बैंकों के राष्ट्रीयकरण की 50वीं वर्षगांठ है। तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के ऐलान के बाद 19 जुलाई, 1969 की मध्यरात्रि को 50 करोड़ रुपये से अधिक जमा वाले 14 बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया था। राष्ट्रीयकरण संबंधी अध्यादेश को चुनौती दी गई तो उच्चतम न्यायालय के 11 न्यायाधीशों के पीठ ने 34 दिनों तक चली सुनवाई के बाद सभी आपत्तियों को खारिज कर दिया। भारतीय स्टेट बैंक (एसबीआई) और उसके सहायक बैंकों के साथ इन राष्ट्रीयकृत बैंकों के पास उस समय बैंकों में जमा 85 फीसदी राशि थी।

राष्ट्रीयकरण के दूसरे दौर में 1980 में 200-200 करोड़ रुपये की जमा वाले छह अन्य वाणिज्यिक बैंकों को राष्ट्रीयकृत किया गया। उस समय कुल जमा में सरकारी नियंत्रण वाले बैंकों की 91 फीसदी हिस्सेदारी थी। सबसे बड़े कर्जदाता बैंक एसबीआई की बहुलांश हिस्सेदारी सरकार के पास है लेकिन यह उस अधिनियम के दायरे में नहीं आता है जिसने ऋण बाजार बढ़ाने के लिए 20 निजी बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया था।

आज बहुत कम बैंकर ही इस वर्षगांठ पर जश्न के मूड में हैं। इस समय कई विश्लेषक राष्ट्रीयकरण से हासिल नतीजों को लेकर सवाल उठा रहे हैं और कुछ लोग दो बड़े निजी बैंकों की हालिया मुश्किलों को देखने के बावजूद निजीकरण की बात कर रहे हैं।

सघन निगरानी कक्ष (आईसीयू) में पहुंच गए कुछ सार्वजनिक बैंकों पर नजर डालने के पहले हम 1969 में बैंकिंग क्षेत्र के हालात पर एक बार गौर कर लेते हैं। उस समय क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों को छोड़कर देश भर में 73 वाणिज्यिक बैंक सक्रिय थे और आज यह संख्या 91 है। बैंक शाखाओं की संख्या में जबरदस्त तेजी आई है और यह 8,262 से बढ़कर 1.41 लाख से ऊपर हो चुकी है। ग्रामीण शाखाओं की संख्या में बढ़ोतरी खास तौर पर अहम है। वर्ष 1969 में केवल 22 फीसदी शाखाएं ग्रामीण क्षेत्रों में थीं। अब यह अनुपात बढ़कर 35 फीसदी से भी अधिक हो चुका है। संख्या के तौर पर यह 1,832 से बढ़कर 50,081 हो चुका है। इस दौरान कस्बों में खुली शाखाओं की हिस्सेदारी 40 फीसदी से घटकर 27.5 फीसदी हो गई है जबकि शहरी एवं महानगरीय इलाकों में बैंक शाखाओं का हिस्सा कमोबेश वही है।

बैंकिंग उद्योग गत पांच दशकों में कई गुना बढ़ गया है। बैंकों में जमा राशि 4,646 करोड़ रुपये के मामूली स्तर से बढ़कर 125 लाख करोड़ रुपये हो चुकी है और बैंक ऋण भी 3,599 करोड़ से बढ़कर 96.5 लाख करोड़ रुपये हो चुका है। सार्वजनिक बैंकों की परिसंपत्ति 1990 के दशक तक चार फीसदी दर से बढ़ी जो भारतीय अर्थव्यवस्था की औसत दर भी थी। लेकिन इस सदी के पहले दशक में इस दर में नाटकीय रूप से सुस्ती देखी गई। वर्ष 2015 के बाद फंसे कर्जों के बारे में खुलासे के लिए मजबूर किए जाने से कुछ बैंकों की बैलेंस शीट में गिरावट देखी जा रही है।

इंदिरा गांधी ने बैंकों के राष्ट्रीयकरण की घोषणा के ठीक एक सप्ताह पहले बेंगलूरु में हुए कांग्रेस अधिवेशन में इसकी जोरदार वकालत की थी। इंदिरा के अलावा इस पूरी कवायद में केवल तीन लोग ही शामिल थे- प्रधानमंत्री के प्रमुख सचिव पी एन हक्सर, रिजर्व बैंक के डिप्टी गवर्नर ए बख्शी और एक कनिष्ठ अधिकारी डी एन घोष। यहां तक कि रिजर्व बैंक के गवर्नर को भी इस बारे में नहीं पता था।

असलियत यह है कि बैंकों के राष्ट्रीयकरण का कदम राजनीतिक भी था। दूसरे विश्व युद्ध के बाद कई बैंक धराशायी हो गए थे क्योंकि वे अटकलबाजी वाली वित्तीय गतिविधियों के लिए पैसे देते थे और उस समय बैंकिंग नियमन में अपेक्षाकृत नया होने से आरबीआई भी करीब 300 बैंकों के पर्यवेक्षण में कठिनाई महसूस कर रहा था।

वर्ष 1960 में पलई सेंट्रल बैंक और लक्ष्मी कॉमर्शियल बैंक धराशायी हो गए तो वित्त मंत्री मोरारजी देसाई के कहने पर आरबीआई ने बैंकों की संख्या को 328 से घटाकर 1965 तक 94 पर लाने का फैसला किया। इसके लिए कुछ बैंकों को बंद करने और कुछ के विलय का रास्ता तय किया गया। राष्ट्रीयकरण के बाद सरकार ने केवल एक बार विलय के लिए मजबूर किया- 1993 में न्यू बैंक ऑफ इंडिया का पंजाब नैशनल बैंक में विलय हुआ था। आज के समय बैंकों के एकीकरण की कवायद पूरे शबाब पर है। एसबीआई के सहायक बैंकों का मूल बैंक में विलय होने के बाद सरकार ने दो छोटे बैंकों का बैंक ऑफ बड़ौदा में विलय कर दिया। इस तरह के कई और विलय भी किए जाने की तैयारी चल रही है। क्या बैंकों का एकीकरण ही जवाब है? क्या इससे सार्वजनिक बैंक अधिक सक्षम हो पाएंगे? एकीकरण योजना के साथ शाखाओं के दोहराव, विभिन्न तकनीकी प्लेटफॉर्म की मौजूदगी और कर्मचारियों के समायोजन जैसी चुनौतियां भी हैं। अगर बैंकिंग क्षेत्र इन बाधाओं को सफलतापूर्वक पार कर लेता है तो भी समग्र बैंकिंग उद्योग में सरकारी स्वामित्व वाले बैंकों की हिस्सेदारी तो कम नहीं होगी। आज यह हिस्सेदारी 70 फीसदी से थोड़ा ही कम है जो अधिकांश बाजारों से काफी अधिक है।

सार्वजनिक बैंकों की मौजूदा हालत के लिए किसे जिम्मेदार ठहराया जाए? इसका जवाब खुद बैंक और उनमें बहुलांश हिस्सेदारी रखने वाली सरकार है। नब्बे के दशक में नए निजी बैंकों के आने के बाद सार्वजनिक बैंकों को पहली बार प्रतिस्पर्द्धा का सामना करना पड़ा। इन बैंकों को लोगों से पैसे जुटाने की मंजूरी देकर सरकार ने उन्हें प्रतिस्पर्द्धी एवं तकनीकी दक्ष बनाने की कोशिश की थी।

वह एक अच्छी पहल थी लेकिन दो नाजुक वजहों से बैंक पंगु हो गए। पहली, परियोजनाओं को वित्त मुहैया कराने वाले संस्थानों को समेट दिया गया और कार्यशील पूंजी देने से अधिक ज्ञान नहीं रखने वाले सार्वजनिक बैंकों के पास भारतीय कंपनियों को दीर्घावधि कर्ज देने के सिवाय कोई चारा नहीं था। उससे ही कर्ज फंसने की समस्या शुरू हुई। दूसरी, सरकार ने अपनी बहुलांश हिस्सेदारी कम करने के बाद भी बैंकों पर नियंत्रण बनाए रखा। वह अब भी इन बैंकों के मुख्य कार्याधिकारियों (सीईओ) को नियुक्त करती है, उनके बोर्ड गठन में अहम भूमिका निभाती है और जरूरत पड़ने पर गैर-बैंकिंग कार्यों के लिए भी उनके आधारभूत ढांचे का इस्तेमाल करती है। वह बैंकरों को बाजार के अनुरूप वेतन-भत्ते भी नहीं देती है। और अब तो बैंकर लगातार जांच एजेंसियों के भी रडार पर हैं। उनके दोनों हाथ बांधकर आप उनसे किसी करिश्मे की उम्मीद नहीं कर सकते हैं।

प्रधानमंत्री जनधन योजना के तहत 36.06 करोड़ नए बैंक खाते खुले हैं। इनमें सार्वजनिक बैंकों का अंशदान 28.65 करोड़ है जबकि निजी बैंकों ने केवल 1.25 करोड़ जनधन खाते खोले हैं। बाकी खाते क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों में हैं। सरकारी-नियंत्रण वाले बैंकों को जो भी काम दिया जाता है वे उसे अच्छी तरह पूरा करते हैं लेकिन कारोबार के मामले में अधिकतर बैंक नाकाम हैं।

बैंक राष्ट्रीयकरण की 50वीं वर्षगांठ भविष्य के बारे में फैसले का इन्हें अधिकार देने का उपयुक्त अवसर है। क्या उन्हें ढांचागत आधार के लिए कर्ज देने और तथाकथित राष्ट्र-निर्माण में योगदान देकर फंसे कर्जों की समस्या पैदा करने के लिए पूंजी देते रहना चाहिए या कुछ बैंकों को खत्म हो जाने देना चाहिए या उन्हें निजी हाथों में सौंप दिया जाए? उन्हें अतीत की याद में कब तक सोते रहने देना चाहिए? यह वक्त जश्न मनाने का है या विलाप करने का?

(लेखक बिज़नेस स्टैंडर्ड के सलाहकार संपादक, लेखक एवं जन स्मॉल फाइनैंस बैंक लिमिटेड के वरिष्ठ परामर्शदाता हैं)

मोदी सरकार में कर्मी संख्या और लोक उपक्रमों को धनराशि बढ़ी

दिल्ली डायरी

ए के भट्टाचार्य

वर्ष 2014 में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को अपने पूर्ववर्ती प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह से एक ऐसी सरकार मिली थी जिसमें कर्मचारियों की कुल तादाद 34.5 लाख थी। यह तथ्य कम ही लोगों को पता होगा कि मोदी ने अपने कार्यकाल के शुरुआती तीन वर्ष में विभिन्न केंद्रीय मंत्रालयों में सरकारी कर्मचारियों की तादाद घटाकर 32.3 लाख कर दी।

बाद के वर्षों में इस कमी की दर घटती गई। 2014-15 में कर्मचारियों की तादाद 4 फीसदी घटाकर 33.1 लाख करने के बाद 2015-16 में यह दर 1.6 फीसदी रही और कर्मचारी घटकर 32.5 लाख हुए। अगले वर्ष 0.44 फीसदी की कमी के साथ यह आंकड़ा 32.3 लाख का रहा।

इसके बावजूद महज तीन वर्ष में कर्मचारियों की तादाद में तकरीबन 2.5 लाख की कमी उल्लेखनीय थी। हालांकि इस कमी का आकार वर्ष 2000-01 में अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा की गई 13 फीसदी की कमी या 2011-12 में मनमोहन सिंह द्वारा की गई 6.5 फीसदी कमी से कम था लेकिन फिर भी यह प्रदर्शन प्रभावी था।

चिंता की बात यह है कि मोदी सरकार ने शुरुआती तीन वर्ष में कर्मचारियों में कमी से जो लाभ हासिल किया था, वह अगले दो साल में इसमें इजाफे के साथ गंवा दिया गया। वर्ष 2016-17 के 32.3 लाख से बढ़कर 2017-18 में इनकी तादाद 34.9 लाख हो गई यानी 7.8 फीसदी का इजाफा। 2018-19 में 3.7 फीसदी की बढ़ोतरी के साथ यह आंकड़ा बढ़कर 36.1 लाख हो गया।

सन 2017-18 में जो 2.50 लाख कर्मचारियों का इजाफा हुआ उसका बहुत बड़ा हिस्सा सरकार के कर विभाग में बढ़े 70,000, असैन्य रक्षा कर्मचारियों में बढ़े 45,000 और गृह मंत्रालय के पुलिस विभाग में बढ़े 61,000 कर्मचारियों के रूप में था। वर्ष 2018-19 में हुई 1.28 लाख की बढ़ोतरी में भारतीय रेल में शामिल किए गए 99,000 नए कर्मचारियों की प्रमुख हिस्सेदारी थी। भारतीय रेल के कुल कर्मचारियों की तादद बढ़कर 13.7 लाख हो गई है।

यह संयोग हो सकता है कि कर्मचारियों की तादाद में कमी सरकार बनने के शुरुआती दो वर्ष में आई जबकि आखिरी दो वर्ष में आम चुनाव करीब आने पर यह रुख उलट गया। क्या कर्मचारियों की तादाद बढ़ने का चुनावों से संबंध है?

कारण चाहे जो भी हो लेकिन यह स्पष्ट है कि मोदी सरकार को ज्यादा कर्मचारियों वाली सरकार से दिक्कत नहीं है। दूसरे शब्दों में कहें तो वह न्यूनतम सरकार, अधिकतम शासन की बात करती जरूर है लेकिन इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए काम नहीं करती। सरकार के इस रुख का एक संकेत इस बात से भी मिलता है कि पिछले दो वर्ष में जहां मोदी सरकार के कर्मचारी बढ़े, वहीं सरकारी क्षेत्र के साथ सरकार की संबद्धता भी बढ़ी।

बीते पांच वर्ष में मोदी सरकार ने सरकारी उपक्रमों में करीब 6.26 लाख करोड़ रुपये की पूंजी डाली। मनमोहन सिंह सरकार ने 2009 से 2014 के बीच करीब 2.33 लाख करोड़ रुपये की राशि इनमें डाली थी। मोदी सरकार द्वारा डाली गई नई पूंजी का बड़ा हिस्सा सरकारी बैंकों को दिया गया है। यह राशि करीब 2.52 लाख करोड़ रुपये के बराबर है। इसके अलावा मोदी सरकार ने भारतीय रेल में 2 लाख करोड़ रुपये, राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण में 1.14 लाख करोड़ रुपये और एयर इंडिया में 17,320 करोड़ रुपये का निवेश किया है।

यह दलील सही है कि निजी निवेश में आए धीमेपन के बीच वृद्धि की गति बरकरार रखने के लिए यह जरूरी था कि सरकार सार्वजनिक उपक्रमों में पूंजी निवेश करे। भारतीय रेल और राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण में किए गए 3.14 लाख करोड़ रुपये को इस आधार पर उचित ठहराया जा सकता है। यहां तक कि सरकारी बैंकों में 2.52 लाख करोड़ रुपये के निवेश को भी उचित ठहराया जा सकता है क्योंकि ये बैंक फंसे हुए कर्ज के दबाव में थे और इन्हें उबारना जरूरी था ताकि ये बेहतर कामकाज करके आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा दे सकें।

सरकारी क्षेत्र का पूंजीगत आवंटन जिसमें आंतरिक संसाधन, ऋण और सरकारी प्रतिभूति शामिल है, वह 2014-15 के 2.96 लाख करोड़ रुपये से बढ़कर मोदी सरकार के कार्यकाल के अंतिम वर्ष यानी 2018-19 में 8.43 लाख करोड़ रुपये तक पहुंच गया। यह बढ़ोतरी कितनी ज्यादा है, इसका अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि सरकार के कुल व्यय में सरकारी आवंटन की हिस्सेदारी 2014-15 के 18 फीसदी से बढ़कर 2018-19 में 34 फीसदी हो गई।

सरकारी क्षेत्र के आवंटन में लगातार इजाफे के बीच सरकार ने इन सरकारी उपक्रमों के आरक्षित भंडार पर भी हाथ डालना शुरू कर दिया। 2014-15 में सरकार ने इन कंपनियों से लाभांश के रूप में 31,692 करोड़ रुपये की राशि ली। बाद के वर्षों में भी लाभांश प्राप्ति बढ़ती रही और 2018-19 में इसके 45,124 करोड़ रुपये रहने का अनुमान है। यह तब है जबकि इन सरकारी उपक्रमों की वित्तीय स्थिति या मुनाफे में कोई बड़ा सुधार होने की खबर नहीं है।

मोदी सरकार की सार्वजनिक क्षेत्र के साथ बढ़ती संबद्धता के अन्य पहलू भी हैं। वर्ष 2014-15 से 2018-19 के बीच पांच वर्षों में मोदी सरकार ने कई तरीकों से इन उपक्रमों की हिस्सेदारी बेची और इससे 2.88 लाख करोड़ रुपये की राशि जुटाई। परंतु इसमें एक भी घटना निजीकरण की नहीं थी। मनमोहन सिंह की सरकार ने 2009-10 से 2013-14 तक के पांच साल में केवल 99,367 करोड़ रुपये जुटाए थे। उसने भी निजीकरण नहीं किया था।

मोदी सरकार ने जिस प्रकार कर्मचारियों की तादाद में इजाफा किया या आवंटन, लाभांश अथवा राजस्व के मामले में सार्वजनिक क्षेत्र के साथ संबद्धता बढ़ाई, उसकी कई वजह हो सकती हैं। परंतु यह भी मोदी सरकार का एक ऐसा पहलू है जहां यह अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार से अलग है। अक्सर इस बारे में बात नहीं होती।

कानाफूसी

प्रियंका का नाम अग्रणी

राहुल गांधी के कांग्रेस अध्यक्ष का पद छोड़ने के बाद से नए अध्यक्ष के नाम को लेकर अटकलों का दौर लगातार चल रहा है। ताजा नाम है पार्टी की महासचिव और राहुल गांधी की बहन प्रियंका गांधी वाड्रा का। प्रियंका उत्तर प्रदेश में पार्टी की प्रभारी हैं और राज्य के कई कांग्रेस नेताओं ने मांग की है कि उनको पार्टी का अध्यक्ष बना दिया जाए। पार्टी के कई लोगों का मानना है कि महाराष्ट्र, हरियाणा और झारखंड जैसे तीन प्रमुख राज्यों में पार्टी को विधानसभा चुनावों की कड़ी परीक्षा से गुजरना है। ऐसे में कहा जा रहा है कि इससे पहले वह पार्टी अध्यक्ष का पद संभाल सकती हैं। पार्टी सूत्रों के मुताबिक चूंकि पार्टी के नेता किसी नाम पर सहमत नहीं हो पा रहे हैं इसलिए पार्टी महासचिव मुकुल वासनिक को अंतरिम अध्यक्ष बनाया जा सकता है। इस बीच प्रियंका गांधी ने बुधवार को 22 वर्ष पहले हुए अपने विवाह के दिन की एक तस्वीर पोस्ट की। राहुल गांधी का ट्विटर अकाउंट जहां अन्य लोगों द्वारा उनकी सहमति से संचालित किया जाता है वहीं प्रियंका गांधी हिंदी और अंग्रेजी में खुद ट्वीट करती हैं।

आपका पक्ष

देश में कहीं सूखा तो कहीं बाढ़ से आफत

देश के पूर्वोत्तर राज्य मिजोरम में बाढ़ का कहर जारी है। बाढ़ के कारण 5,000 से अधिक लोग राहत शिविर में रह रहे हैं। भारी बारिश के कारण 4,000 से अधिक लोगों को सुरक्षित जगहों पर पहुंचाया गया है। मिजोरम में बाढ़ की वजह से 205 गांवों के करीब 2,000 परिवार प्रभावित हुए हैं। इसके अलावा आठ जिलों के करीब 1,500 घर क्षतिग्रस्त हुए हैं। देश के कई राज्यों में बाढ़ से काफी नुकसान हुआ है। असम, पश्चिम बंगाल और बिहार में भी बाढ़ के कारण लोग बेघर हो गए हैं। इन राज्यों में बाढ़ से काफी नुकसान हुआ है। सरकार राहत और बचाव का कार्य कर रही है लेकिन प्रभावित होने वाले लोगों की संख्या काफी अधिक है। यह देश का दुर्भाग्य है कि किसी जगह पानी की कमी होती है तो किसी जगह बाढ़ के कारण नुकसान उठाना पड़ता है। सरकार को देश की भौगोलिक स्थिति के अनुसार कार्ययोजना बनानी चाहिए। किसी राज्य के

बिहार के सीतामढ़ी में लोगों को सुरक्षित जगह ले जाता एसडीआरएफ दल -पीटीआई

भौगोलिक स्थिति के अनुसार योजनाएं बनानी चाहिए जिससे बाढ़ से होने वाले नुकसान को कम किया जा सके। वहीं देश के कई राज्यों में सूखे की स्थिति बनी हुई है। कई राज्यों में समय पर मॉनसून नहीं पहुंच पाने से बारिश नहीं हुई है जिससे फसल की बुआई समय पर नहीं हो पाई है। मॉनसून आने के 40 दिन बाद भी दिल्ली तथा दिल्ली से सटे राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में मॉनसूनी बारिश नहीं हुई है। दो तीन दिन पहले ही दिल्ली में मॉनसून का आगमन हुआ है। इससे पहले यहां पानी की कमी के लिए त्राहिमाम मचा हुआ था। देश के कई क्षेत्रों में भूजल स्तर में भारी गिरावट आई है। यह समय बारिश के पानी को संचय करने का है। सरकार के साथ-साथ लोगों को भी जल संचयन में अपना योगदान देने की जरूरत है।

नेहा शर्मा, नोएडा

भारत में कुपोषण एक गंभीर समस्या

बुधवार को राज्य सभा में महिला एवं बाल विकास मंत्री स्मृति इरानी ने माताओं एवं बच्चों के कुपोषण पर पूछे गए प्रश्न का उत्तर देते हुए बताया कि करीब 15 मंत्रालय कुपोषण की समस्या से निपटने के लिए एकजुट होकर काम कर रहे हैं। आंगनवाड़ी को और सशक्त करने के लिए उनके बजट में और इजाफा किया गया है। यह बजट लगभग 19,000 करोड़ रुपये का है एवं पूरक पोषण के लिए 8,000 करोड़ रुपये से ज्यादा इस वित्तीय वर्ष में दिए जा चुके हैं। हाल ही में जारी संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि देश में कुपोषण की संख्या में कमी आई है। रिपोर्ट के अनुसार देश में अब भी 19 करोड़ 44 लाख लोग कुपोषण के शिकार हैं। देश आज भी भुखमरी, कुपोषण तथा गरीबी से लड़ रहा है। देश की सरकार इन समस्याओं से निपटने के लिए करोड़ों रुपये खर्च करती है लेकिन बढ़ती आबादी एवं भ्रष्टाचार के चलते इन समस्याओं में गिरावट मंद गति से हो रही है। प्रशासन को सरकारी योजनाओं का क्रियान्वयन मुस्तैदी से करना चाहिए। आदिवासी क्षेत्र में कुपोषित बालक एवं माताओं की संख्या अधिक है। अत: केंद्र एवं राज्य सरकार को कुपोषण से लड़ने के लिए एक सटीक रणनीति बनानी चाहिए। आंगनवाड़ी सेविकाओं को जरूरी प्रशिक्षण मुहैया कराया जाए ताकि वे माताओं एवं बच्चों की पोषण से जुड़ी समस्याओं का निदान करने में सक्षम हों।

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।